अध्याय : 1

असंगत नाटक : सैद्धान्तिक विवेचन

अध्याय : 1

असंगत नाटक : सैद्धान्तिक विवेचन

भूमिका

नाटक साहित्य की सबसे रमणीय विधा है। यह व्यक्ति को उसके परिवेश से जोड़ती है। साहित्य की अन्य विधाओं के समान नाटक में वर्णित जीवन की कल्पना की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उसमें दर्शक या श्रोता पात्रों के जीवन को अपने सामने देखते हैं। नाटक में रसानुभूति के लिए किसी पूर्व दक्षता की आवश्यकता नहीं होती। नाटक शिक्षित-अशिक्षित, नागरिक-ग्रामीण, बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरूष सभी नाटक सामने देखकर या उसे पढ़कर उसका रसास्वादन कर सकते हैं। नाटक व्यक्ति से साक्षात्कार की निकटतम विधा होने के कारण व्यक्ति, दर्शक या श्रोता को उसके रसास्वादन में कोई त्रास नहीं रहता। नाटक में काल भेद नहीं रहता। उसमें भूत और भविष्य दोनों ही वर्तमान के रूप में देखे जा सकते हैं। इसके साथ ही साथ नाटक को अधिक रमणीय बनाने के लिए नृत्य, संगीत आदि कलाओं का उपयोग भी किया जाता है। नाटक का महत्वपूर्ण अंग मंचीयता है। मंच के बिना नाटक नहीं खेला जा सकता। मानव के जीवन में अनेक संगत-असंगत प्रवृत्तियाँ होती हैं, जिसको रंगमंच पर एक साथ देखा जा सकता है। अतः नाटक एक ऐसी विधा है जिसमें आदमी अपने जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों को खोलकर समाज के सामने पात्रों द्वारा आलोकित करता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : विविध प्रवृत्तियाँ

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सन 1950-55 से प्रारम्भ होने वाला युग राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक धरातल पर जनमानस में उथल-पुथलपूर्ण वातावरण उद्भव

करनेवाला प्रमाणित हुआ। इस काल में भ्रष्ट नेताओं के कारण स्वतंत्रतापूर्व के स्वप्न मिट्टी में मिल गए। इसलिए सामाजिक जीवन में भी अनेक नयी समस्याएँ चुनौती का रूप लेकर सामने आयीं। इसी कारण इस काल में विषय और शिल्प की दृष्टियों से नाटक अधिक समृद्ध और सुविकसित हुए हैं। हिन्दी के नाटककारों को इस काल में युगीन वातावरण, परिस्थितियों और नवीन प्रभावों ने नयी दृष्टि दी। फिर भी कुछ नाटककार अपनी पूर्व परम्परा से ही चिपके रहे तो कुछ नये नाटककारों ने नाट्य-रचना की नयी दृष्टि, नयी वस्तु एवं नये शिल्प का प्रयोग किया, जिसमें नये जीवन-बोध को चित्रित किया है।

इस काल में हिन्दी के नाटकों में कथा और शिल्प की दृष्टि से काफी वैविध्य रहा है। डॉ॰नरनारायण राय के शब्दों में - "इनमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की सूक्ष्म विश्लेषणात्मक दृष्टि के साथ पारिवारिक बिखराव, प्रेम और यौन समस्याएँ, महानगरों की अपरिचित भीड़, आर्थिक विषमता की वृद्धि, राजनीति की दिशाहीनता, शोषण एवं भ्रष्टाचार जैसी अनेक नयी गम्भीर और ज्वलंत समस्याएँ प्रतिकालित की गई है।"[1] इसी तरह स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य क्षेत्र में अनेक नवीन प्रयोग हो चुके हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य-साहित्य का दृश्य नये प्रयोगों की दृष्टि से अधिक सम्पन्न और वैविध्यपूर्ण होता गया है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का बहिष्कार तो होता रहा, लेकिन इन नवीन प्रवृत्तियों के प्रयोग को ही प्रयोगधर्मिता के रूप में पाया गया। लोक-नाट्य परम्परा, अनुदित नाटक, नुक्कड नाटक, काव्य-नाटक, बाल रंगमंच, उपन्यास, कहानी, कविता के नाट्य रूपान्तर तथा विसंगत नाट्य-शिल्प आदि कई नवीन प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक में विषय की विविधता के साथ साथ उसमें शिल्प की दृष्टि से भी अनेक नये प्रयोग होते रहे हैं। इन्हीं प्रयोगों को अनेक रूपों में देखा जा सकता है। प्रतिकात्मकता नाटक, अनेकांकी नाटक, एकांकि नाटक, रेडियो नाटक, गीतिनाटक के अलावा नृत्य-नाट्य, संगीत रूपक, भाव-नाट्य, छाया-नाट्य, एकपात्रीय नाटक, सिने नाटक, लघुनाटक आदि नये टेक्निकों (तकनीकों (शैलियों)) का प्रयोग हो रहा है। इसीके साथ-साथ सूत्रधार से कथा-सूत्रों को जोड़ने की टेक्नीक (तकनीक/शैली), नेपथ्य

से उद्घोषणा, रिपोर्ताज, रेडियों फीचर, उपक्रम, उपसंहार जैसे नये टेकनीक स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में अधिक प्रभावशाली रहे हैं, जिससे समाज के सभी अंगों पर विस्तृत रूप से कम शब्दों में नाटक लिखें। अतः स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक निश्चय ही विषय, चेतना और कला की दृष्टि से हिन्दी नाटक साहित्य में काफी समृद्धशाली और परिवर्तनशाली रहा है। इसी परिवर्तनशीलता की एक धारा "हिन्दी असंगत नाट्य धारा" के रूप में हिन्दी नाटक साहित्य में आयी है, जो पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिन्दी में विकसित हुई है।

"असंगत" शब्द प्रयोग

"असंगत" या "विसंगत" अंग्रेजी के "एब्सर्ड" (Absurd) के पर्यायवाची शब्द हैं, जो हिन्दी में पाश्चात्य प्रभाव के कारण आये गये हैं। "बृहत् अंग्रेजी-हिन्दी कोश" में (Absurd) के अर्थ इस प्रकार प्रयुक्त हैं - असंगत, विसंगत, अनर्थक, अर्थहीन, अनुचित, अयुक्त इ·।[2] "मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश" में (Absurd) के अर्थ हैं- 1· अनर्थक, अयुक्त, असंगत, न्याय विरूद्ध, ऊटपटाँग, 2· तर्कहीन, 3· मूर्खतापूर्ण, हास्यास्पद, वाहियात, लचर, 4· अर्थहीन, बेतुका।[3] मानक हिन्दी कोश के प्रथम खण्ड में "असंगत" शब्द के अर्थ इसप्रकार दिये गये हैं - असंगत वि·{सं·न·त·} {भाव,असंगति} 1·जो किसी से मिला, लगा या सहा न हो। 2· जिसकी किसी से संगति या मेल न बैठता हो। 3· जो प्रस्तुत विषय के विचार से उचित, उपयुक्त अथवा समीचीन न हो।[4] "मानक हिन्दी कोश" के पाँचवे खण्ड में "विसंगत" शब्द के अर्थ इस प्रकार दिये गये हैं - विसंगत - वि·{सं·ब·स·तृ·त·वा} जो संयत न हो। जिसके साथ संगति न बैठती हो। बे-मेल।[5] "अमेरिकन विश्वकोश" खण्ड-1 के अनुसार "एब्सर्ड" (Absurd) संज्ञा का प्रयोग इस तरह किया है - "Absurd is a term used originally to describe a violation of the rules of logic. It has acquired wide and direrse cannnotations is modern theology, Philosophy, and the arts in which it expresses the Pailure of traditional values to fulfill man's spiritual

and emotional needs.' अर्थात - "एब्सर्ड" संज्ञा का प्रयोग मूलतः तर्क के नियमों के भंग को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। वह आधुनिक, अध्यात्म, दर्शन तथा विभिन्न कला-क्षेत्र में अशक्यप्राय बातों को प्राप्त करने की एक ऐसी चाह है जिसमें मानव की आध्यात्मिक तथा भावात्मक जरूरतों की परिपूर्ति के लिए परम्परागत मूल्यों का विघटन व्यक्त होता है।"[6] डॉ॰गोविंद चातक के अनुसार "असंगत" अथवा "एब्सर्ड" का अर्थ होता है - विषम स्वर होना, सामंजस्यहीन, अतार्किक, असम्बद्ध, ऊलजलूल, हास्यास्पद आदि।"[7] वस्तुतः (Absurd) एक विशिष्ठ और दार्शनिक प्रयोग है। सबसे पहले मार्टिन एसलिन ने इस शब्द की, इसके दर्शन की विस्तृत व्याख्या की। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (1965) में इस शब्द को परिभाषित किया गया है। पेंगुयन डिक्शनरी ऑफ थिएटर में जॉन रसेल टेलर कहता है कि यह शब्द 1950 के नाटककारों के एक विशेष से जुड़ा है - उन नाटककारों के समूह से जो अपने को किसी खास स्कूल का नहीं मानते, जो सृष्टि में मनुष्य की स्थिति के बारे में भिन्न ढंग से सोचते हैं।"[8]

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार हिन्दी में प्रयुक्त "असंगत" या "विसंगत" शब्द पाश्चात्य प्रभाव के कारण अंग्रेजी के एब्सर्ड शब्द का रूपान्तर ही है। असंगत नाटक का मूल निर्माण पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही हुआ है। अतः इसका सामान्य अर्थ हास्यास्पद, निरर्थक, तर्कहीन, संगतिहीन तथा ऊलजलूल होता है। अर्थात् जिसमें कोई सीधा अर्थ या संगति न हो वही असंगत या विसंगत है।

जीवन का अविभाज्य हिस्सा : असंगति

समसामयिक युग में मनुष्य के जीवन में विसंगति काफी मात्रा में फैली है। इस युग में विज्ञान ने जो प्रगति की है उसके फलस्वरूप आज का आदमी अपना अस्तित्व खो बैठा है। आज विज्ञान के कारण मनुष्य जीवन खोखला तथा निकम्मा बना है। इसी कारण आदमी को अपनी संस्कृति, रीति, नीति का कोई ख्याल ही नहीं रहा है। वह दिशाहीन होकर जीवन यापन का प्रयत्न कर रहा है, लेकिन उसमें उसको जो मिलता है उसे वह चाहता नहीं और जो मिलता नहीं

उसकी चाह में अक्सर अंधी दौड़ कर रहा है। परिणामस्वरूप जीवन का अधिकांश समय जीवन व्यवहार में संपत्ति जोड़ने के लिए खर्च करता है। इसी तरह हर व्यक्ति कहीं न कहीं असंगत होता है। मनुष्य जीवन के लिए अच्छा परिवेश चाहता हे, लेकिन उसे वह नहीं मिलता। उसके जीवन में कई विडम्बनायें घर कर बैठी हैं। परिणामस्वरूप जीवन का अधिकांश हिस्सा परिवेश की विसंगतियों में घटित होता है। इस विसंगत सन्दर्भ के बारे में डॉ·रामजी तिवारी ने इस तरह विचार व्यक्त किये हैं - "विसंगति और विडम्बना वर्तमान जीवन की विविध विद्रुपताओं एवं असंगतियों का फल है। जीवन-व्याप्त विशेषताओं को उद्‌घाटित करने एवं मार्मिक कथ्य में गहरे अर्थबोध को सन्निर्वेशित करने के लिए यह एक उपयोगी उपकरण है।"[9] रामजी तिवारी के विचार समीचीन ही हैं।

आज के युग में मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असंगति का विद्रूप रूप फैला हुआ है। इन विसंगतियों में जकड़े मनुष्य के जीवन में विसंगति की लम्बी कड़ी निर्माण हो चुकी है। उसके फलस्वरूप मनुष्य के जीवन में हर समय विसंगत प्रवृत्तियों का निर्माण होता रहा है और इसी कारण मनुष्य सुसंस्कृत होकर भी जंगली पशु की तरह आचरण करता रहा है। इस संदर्भ में डॉ·रामसेवक सिंह के विचार योग्य हैं - "वर्तमान परिस्थितियों के दायरे में उसका जीवन किसी शीशे के घर की तरह होता है जहाँ वास्तवता की छायाएँ अदृश्यतया एक-दूसरे में मिल जाती हैं और दर्शक को सम्भ्रम में डालती हैं। सामान्यतया वास्तवता स्वप्नों की तरह अनिश्चित और असंगत होती हैं।"[10]

जीवन की असंगतियों का बोध समस्त विश्व में द्वितीय महायुद्ध के बाद गहराई से हुआ। इस महायुद्ध ने समस्त विश्व में अपना जहर फैला दिया। परिणामस्वरूप मनुष्य के आंतरिक जीवन और जगत् में निरर्थकता, असंगति, तर्कहीनता निर्माण हो गयी। मनुष्य को रोजमर्रा की जिन्दगी मिली। इसीके साथ-साथ भौतिक वृद्धियों और मशिनी विकास के कारण मनुष्य का जीवन पराधीन, अनिश्चित और संकटग्रस्त बन गया। इसीके कारण आज का आदमी नीति-अनीति का विचार नहीं करता। वह जीवन के सब बंधन तोड़कर अनीति अपनाकर नैतिकता को भूल गया है। आज

प्रायः धर्म के नाम पर दंगे-फ़साद होते दिखते हैं। इसके फलस्वरूप मनुष्य अपना कर्तव्य भूलकर अकर्तव्य के पीछे दौड़ रहा है। इसी कारण वह अपनी जिंदगी में नीरस एवं शुष्क बन गया है।

समसामयिक युग में वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक चिंतनधारा के संघात के सम्प्रति मानव जीवन पर्याप्त आलोड़ित हुआ है। जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। अतः स्पष्ट है कि यह युग मूल्य संक्रमण का है। इस काल में दिशाहीनता की (असंगति) की स्थिति स्वाभाविक ही है। इस स्थिति में मनुष्य के परम्परागत मूल्य अपने जीवन की अन्तिम सांसे ले रहें हैं। नेता अपनी कुर्सी बनाये रखने के लिए किसी भी हद तक पहुँच सकते हैं। नेता सत्तान्धता के कारण स्वार्थी, भ्रष्टाचारी, अवसरवादी, सुविधाभोगी एवं षड़यंत्रवादी बन गये हैं। ~~सामान्य जनता में~~ रक्षक को भक्षक बना देखकर ~~उनमें~~ सामान्य जन में मोहभंग की स्थितियाँ निर्माण हो चुकी हैं। ऐसी स्थिति में अटका हुआ आदमी अपने आपको असहाय और ~~लाचारी~~ लाचार महसूस कर जीवन व्यतीत करने लगा है।

वर्तमान ~~जीवन~~ में औद्योगिकरण और मशिनीकरण का मनुष्य के भौतिक जीवन पर बड़ा असर पड़ा है। आज का मानव सुखी जीवन यापन के लिए संपत्ति कमाना चाहता तो है लेकिन मशीनों के कारण मानव भी मशीन की तरह बर्ताव करने लगा है। परिणामस्वरूप वह कामचोर बन गया है। ऐसी स्थिति में यंत्रों का बोलबाला होने के कारण मनुष्य रोजगारहीन होकर उसका जीवन नीरस, शुष्क, कृत्रिम तथा संवेदनाहीन बन चुका है। इसी कारण उसके जीवन में असंगति घरकरके बैठ गयी है। इसी असंगति ने मनुष्य को यंत्रों का दास बना दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य का जीवन निश्चय ही असंगत बन गया है। इसी असंगति के कारण मनुष्य जीवन में निरर्थकता, मूल्यहीनता, भ्रष्टाचारी वृत्ति, निष्क्रियता, क्रूरता, दिशाहीनता, भावनाहीनता का निर्माण हुआ है। इन असंगतियों के कारण मनुष्य "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" को भूल गया है और

निरर्थक, बेतुका, विवेकशून्य जीवन बीता रहा है।

मनोवैज्ञानिक पीठिका के परिप्रेक्ष्य में असंगति

वर्तमान युग में मानव मन पर असंगति का गहरा प्रभाव पड़ा दिखाई देता है। उसका कारण यह है कि द्वितीय महायुद्ध के बाद मानव ने औद्योगिक-वैज्ञानिक प्रगति की है, जिससे मूल्य-विघटन और चेतना-अवमूल्यन काफी मात्रा में हुआ है। परिणामतः मानव जो परंपरागत आये हुए रीति-रिवाज, नीति-अनीति को भूलकर जो मन में आता है, उसके योग्य वह जो समझता है वही करता है। इसलिए मानव को उसके बाहरी चरित्र को देखकर कुछ भी कहा नहीं जा सकता। आज का आदमी बाहर से एक और अन्दर से एक बन बैठा है। इसी कारण समाज में स्वार्थ की मात्रा ज्यादा बढ़ गई है। स्वार्थ के लिए आज का मनुष्य माता-पिता, बहन-भाई, पति-पत्नी इन रिश्तों को भूल गया है। इससे अपनत्व, भाईचारा प्रायः टूटने लगा है। इसी कारण आज मानसिक अधःपतन हुआ है। इस सन्दर्भ में देवराज उपाध्याय के शब्द लक्षणीय हैं - "मनुष्य के चरित्र का वास्तविक आकलन और उसके साथ व्यवहार करने का उचित तरीका यही है कि हम उसकी बातों, व्यवहार तथा आचरण के (Face Value) पर न जाए। ज्यों-का-त्यों उसी रूप में ग्रहण करने की चेष्टा न करें। परन्तु यह देखे कि ये बाहरी आचरण और व्यवहार किन अचेतन प्रवृत्तियों अथवा ग्रंथियों के प्रतीक हैं।"[11] इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य के चरित्र का वास्तविक आकलन और उसके साथ व्यवहार करने के लिए उसकी बातों, व्यवहार तथा आचरण पर न जाए। इस तरह मनुष्य के मन में असंगति का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। "वस्तुतः असंगत नाटककार यह मानता है कि उसके नाटकों का दर्शक मात्र दर्शक नहीं, वह तो इन टूटे संवादों, बिखरे अनुभवों बेमेल चरित्रों को अपनी कल्पना से जोड़ने वाला एक सृजनशील प्राणी है।"[12]

समसामयिक युग में परिवेशजन्य ऊब, सामाजिक अलगाव, अकेलेपन की समस्या, यौन-भावनाओं की अतिशयता, संत्रास, बेरोजगारी, शोषण, महत्वहीनता तथा महानगरीय बोध ने मनुष्य को अन्दर से तोड़ डाला है। वह सिर्फ बाहर से दिखावा मात्र रह गया है। उसने अपना आत्मविश्वास खो दिया है। इसलिए

वह हर जगह पीछे चल रहा है। आज यौन-भावनाओं ने विद्रूप रूप धारण कर लिया है। हर वक्त आदमी जानवरों की तरह अपना बर्ताव करने लगा है। मनुष्य-मन की घोर उपेक्षा हो रही है। उसके मन के विरुद्ध ही सब चल रहा है, काफी समय से पति-पत्नी के संबंध को आज करार के रूप में पाकर विवाह बंधन धन कमाने का एक साधन बन गया है। इससे पूरे समाज की हानी हो रही है। इस तरह हर व्यक्ति के मन में विसंगति गहराई तक पहुँची दिखाई देती है। यह युग राजनीतिप्रधान है, जिसके दुष्प्रभावों से मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन और मानवीय गुण भी अछूते नहीं रहे हैं। नित्य प्रति बढ़ती समस्याओं, आवश्यक वस्तुओं के अभाव, आर्थिक विषमताओं से चुकते सम्बन्ध और मृतमय मानवीयता ने मनुष्य का व्यक्तिगत अस्तित्व ही नष्ट कर दिया है। वह मात्र विरोध करनेवाला जुलूस और भीड़ ही बनकर रह गया है। इसी तरह की विसंगति मनुष्य के मन को मूर्तकर देने लगी है। साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिम्ब होता है। मानव के सभी आचारविचार, नीतिमूल्य, समाज के ह्रास-विकास के प्रतिबिंब दिखाई देता है। इसलिए साहित्य का अनन्यसाधारण महत्व है। मानव के विसंगत जीवन का अभ्यास करने के लिए तो मनोविज्ञान का पग-पग पर सहारा लेना पड़ता है। डॉ॰नरनारायण राय ने मनोविज्ञान और मनुष्य के असंगत आचरण पर इस तरह मत व्यक्त किया है - "मनोविज्ञान के बढ़ते हुए विश्लेषण ने व्यक्ति के असामान्य व्यवहारों का अध्ययन कर यह स्पष्ट कर दिया है कि हर व्यक्ति अपने जीवन-व्यवहार में कही असामान्य होता है और उसके व्यवहारों एवं आचरणों में संगति नहीं होती।"[13] अतः स्पष्ट होता है कि विसंगति मानव जीवन में सभी ओर गहराई से व्याप्त हो गयी है। इसका कारण मनुष्य मन पर होने वाले मनोवैज्ञानिक कारण ही हैं।

असंगत नाटक से अभिप्राय

असंगत नाटक स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक की एक अगली कड़ी है। जिसमें नाटककार ने समसामयिक युग की विविध विद्रुपताओं का अपनी शैली में चित्रण करने का प्रयास किया है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक में "असंगत नाटक" नये प्रयोग के रूप में अपना महत्व रखता है। अतः असंगत नाटकों की अपनी स्वतंत्र विशेषताएँ

होना स्वाभाविक ही है। इन नाटकों का कथानक बड़ी सूक्ष्म होता है। उसमें कार्य-व्यापार अधिक रहता है और उसके कथ्य में कोई क्रमबद्धता नहीं रहती। अतः उसके कथ्य में भीतरी संगठन आवश्यक रहता है और उसीसे दर्शक जुड़े रहते हैं। उसीके साथ-साथ पात्रों का चरित्र-चित्रण विघटित और सामान्य होता है। इन नाटकों के संवादों में भी कोई संगति प्रतीत नहीं होती। अतः "असंगत" या "विसंगत" शब्द असंगत नाटकों की प्रवृत्तिगत विशेषता के सूचक हैं। हिन्दी में भी ये नाटक "असंगत नाटक" या "विसंगत नाटक" नाम से ही प्रचलित हैं।

असंगत नाटकों में मनुष्य जीवन की विसंगतियों का चित्रण किया है। व्यक्ति अपने जीवन में असामान्य (Abnormal) तथा साधारण होता है। उसके आचार-विचारों में कहीं न कहीं विसंगति होती ही है। व्यक्ति के निरर्थक जीवन का चित्रण करना इन नाटकों का परम उद्देश्य रहा है।

असंगत नाटककारों की मान्यता है कि मनुष्य के जीवन में निरर्थकता, निराशा और जीवन के बेतुकापन ने गहरा प्रभाव डाला है। इसीकारण व्यक्ति का जीवन निरूद्देश्य रहा है। मनुष्य के जीवन में कोई सुनियोजित लक्ष्य न होने के कारण उसका जीवन नीरस बन गया है। यंत्रों के निर्माण के कारण उसमें निराशा ने घर कर लिया है। अतः व्यक्ति का जीवन अनिश्चित और संकटग्रस्त बन गया है। मनुष्य के मन में विनाश के आतंक ने निराशा, भ्रम, कुंठा और संत्रास को निर्माण किया है। वह उससे बाहर तो निकलना चाहती है, लेकिन निकल नहीं पाता। मनुष्य नाते-रिश्तों को भूल गया है। इसलिए व्यक्ति हास्यास्पद जिन्दगी जी रहा है। उसमें अनर्गलता, बेतुकापन और आनाचारिकता भरी है, जिससे मनुष्य के जीवन में असंगतियों ने जन्म लिया है।

पाश्चात्य एवं भारतीय विचारकों ने असंगत नाटकों के बारे में अलग-अलग विचार व्यक्त किये हैं। "ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिटरेचर" ग्रंथ में मुंद्रा द्वय ने असंगत नाटकों की निम्नलिखित विशेषताएँ[14] दी हैं -

1. मानव जीवन अनिवार्यतः अर्थहीन है, अतः वह घृणास्पद है।

2· मानव के प्रयासों का हमेशा फल प्राप्त होगा ही ऐसी बात नहीं, अतः वह नैराश्यपूर्ण है।

3· वास्तवता तब तक अस्वीकार्य है, जब तक वह स्वप्न और इंद्रजाल से मुक्त नहीं है।

4· मनुष्य मृत्यु के अधीन रहता है, जो हमेशा स्वप्नों और इंद्रजालों को स्थानांतरित करती रहती है।

5· असंगत नाटकों में प्रायः अर्थपूर्ण कार्य व्यापार और कथावस्तु का अभाव होता है। जो कुछ थोड़ा-बहुत घटित होता भी है वह अर्थपूर्ण नहीं हो सकता।

6· अंतिम स्थिति असंगत या हास्यास्पद होती है।

7· असंगत नाटक उद्देश्यपूर्ण नहीं होता और समस्या नाटक की भाँति निश्चयबोधक भी नहीं होता। वह गूढ़ चित्रकारी की भाँति होता है, जो निश्चित अर्थबोध दिलाने में असमर्थ माना जाता है।

अलबेर कामूने "दि मिथ आफ सिसिफस" में एब्सर्ड की परिभाषा करते हुए कहा था - "शीशे की दीवार के पीछे टेलीफोन पर बात करता कोई व्यक्ति उसकी आवाज न सुनी जाकर भी उसके हावभाव को देखा जा सकता है। अतः अपने आपसे एक प्रश्न पूछा जाना स्वाभाविक है, वह व्यक्ति क्यों जीवित है ? अपनी ही अमानुषिकता के समक्ष यह यातना, अपने ही सच्चे रूप के समक्ष कल्पनातीत असमर्थता का एहसास, यह मितली जैसा कि एक समकालीन लेखक ने कहा है, यह सब एब्सर्ड हैं।"[15]

पश्चिम के असंगत नाटककार युजीन आयनेस्को ने विसंगत नाटक के सम्बन्ध में लिखा है कि, "एब्सर्ड है उद्देश्यहीनता, अपनी धार्मिक, आधिभौतिकी और अनुभवातीत जड़ों से विछिन्न होकर मनुष्य खो गया है, उसके सारे कर्म निरर्थक, एब्सर्ड और निष्प्रयोजन बन गये हैं।"[16]

समसामयिक यथार्थ को सम्यक् रूप से उद्घाटित करने में एब्सर्ड नाटक अपने-आप में परिपूर्ण रहे हैं। इसी दावे की व्याख्या करते हुए एब्सर्डवादी मार्टिन एसलिन ने लिखा है - "रचनाकार के आंतरिक संसार से असंपृक्त, किसी बाहरी सूचना अथवा समस्या अथवा चरित्रों की नियति उपस्थित करने से एब्सर्ड रंगमंच का कतई वास्ता नहीं है, क्योंकि किसी स्थापना की व्याख्या करना अथवा वैचारिक मुद्दों पर बहस आयोजित करना एब्सर्ड नाट्य-विधा के कार्यक्षेत्र में नहीं आता है। और न ही घटनाओं को चित्रित करना और नियति को निरूपित करना और चरित्र की दहला देनेवाली घटनाओं को प्रतिरूपित करना ही इसके कार्यक्षेत्र में आता है। दरअसल इसका कार्यक्षेत्र किसी एक व्यक्ति की बुनियादी स्थिति को उपस्थित करना ही है। और चूंकि महज अस्तित्वबोध को प्रस्तुत करना ही इसका प्रयत्न है, अतएवं अचरण और नैतिकताओं की समस्याओं को वहन जाँच सकेगा और न सुलझा सकेगा।"[14]

असंगत नाटकों पर सबसे पहले पश्चिम के विद्वानों ने प्रकाश डाला है। किन्तु हिन्दी में भी उसका प्रभाव काफी मात्रा में दिखाई देता है। अतः हिन्दी के प्रसिद्ध नाट्य-आलोचक नरनारायण राय ने असंगत नाटकों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - "व्यावहारिक जीवन में हर व्यक्ति को अपने चरित्र से भिन्न भूमिकाएँ निभानी होती हैं। यही है जीवन की आंतरिक "विसंगति" या "असंगति"। जिस नाट्य-रचना में यह असंगति जितनी अधिक उजागर होती है अपने आप में वह ड्रामा उतना ही "एब्सर्ड" हो जाता है।[18]

डॉ. किरनचंद्र शर्मा ने भी असंगत नाटक के बारे में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है - "असंगत नाटककार सबसे पहले तर्क और बुद्धि का विरोध करता है और फिर दूसरे स्थान पर आदमी के भीतर आदमी के होने का।.....रचनाकार न यहाँ किसी मानवता का दायित्व अपने ऊपर ढोता है और न समाज की कोई प्रतिबद्धता से उसे भय लगता है इसलिए उसकी सारी शक्ति सवालात पैदा करने पर लगी है।"[19]

"हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा" में डॉ॰जयदेव तनेजा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए असंगत नाटकों के बारे में अपना मत लिखा है - "इन नाटकों का कथानक तर्क-तारतम्य युक्त नहीं होता। संरचना सीधी रेखा में न होकर वृत्ताकार होती है। चरित्रों में भी विकास या बदलाव की कोई संभावना नहीं होती। उपदेश-परक उद्देश्य के बजाय नाटककार जीवन के खोखलेपन, अकेलेपन, ऊब, अलगाव, और अर्थहीनता का विसंगत दृश्यांकन भर करता है।"[20]

डॉ॰रामसेवक सिंह ने भी असंगत नाटक पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - "प्रत्येक एब्सर्ड नाटक अक्सर अपने आप में एक काव्यबिम्ब होता है, उसमें प्रतिकों की सहायता से जीवन की असंगतियों, सम्बद्धताओं और विडम्बनाओं को उभारने का प्रयत्न होता है।"[21]

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण के आधार पर यह साबित होता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य जगत् में विसंगत नाट्य प्रणाली एक नयी दृष्टि लेकर दृष्टिगोचर होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध में जो विभिषिका उभरकर आयी जिससे मनुष्य जीवन में असंगति का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। अतः असंगत नाटकों में मनुष्य जीवन की जो नयी विशिष्टता, प्रयोगशीलता, नवीनता और विसंवादिता, इसके साथ-साथ निरर्थकता, विडम्बनाओं, सम्बद्धताओं, निराशा और आत्मघुटन जैसे अनेक असंगतियाँ उभरने का प्रयास होता रहा है। असंगत नाटकों का निर्माण योजनाबद्ध सिद्धान्त या किसी आंदोलन से न होकर समसामयिक जीवन के यथार्थ के कारण हो गया है। मनुष्य जीवन की सारहीनता, ऊब, संत्रास, निराशा और असंगति को प्रतिकों के माध्यम से -हास-परिहास की शैली में प्रकट करने के कारण उसे असंगत नाटक कहा जाता है। असंगत नाटक में कथानक को इतना महत्त्व नहीं दिया जाता। क्योंकि उसकी घटनाओं में किसी भी प्रकार की संगति प्रतीत नहीं होती। इनके चरित्र प्रायः उलझे, थके-हारे, ऊबे, निष्क्रिय तथा असंगत होते हैं। इन नाटकों में जीवन के खोखलेपन को दिखाने के लिए विसंगत संवादों या शब्दों की पुनरावृत्ति का सहारा लिया जाता है। इनमें जीवन की समस्याओं को उद्घाटित किया जाता

है, लेकिन आनंद नहीं मिलता। इस दृष्टि से पारम्परिक नाटक से यह नाटक अपना अलग महत्व रखते हैं। इनमें अर्थ की तलाश करनी पड़ती है। इन नाटकों में मूल्यों के प्रति उपेक्षा भी पायी जाती हैं। संक्षेप में विसंगत नाटक परम्परागत नाटकों की तरह कथानक प्रधान नाटक न होकर उनमें से स्वतः अनुभव गुजरने के नाटक हैं।

असंगत नाटक और परम्परागत नाटक

असंगत नाटक स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य की अगली कड़ी है। अतः परंपरागत नाटक और असंगत नाटकों में काफी अन्तर दिखाई देता है। असंगत नाटकों की परम्परा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पाश्चात्य देशों में सबसे पहले शुरू हो गयी है। हिन्दी नाटक जगत् में यही पाश्चात्य प्रभाव दिखाई देता है। जिसे आज हम "असंगत" या "विसंगत" नाटक के रूप में देखते हैं।

असंगत नाटक और परम्परागत नाटक में काफी मात्रा में अन्तर दिखाई देता है। असंगत नाटकों में कथानक का कोई महत्व नहीं रहता। असंगत नाटकों का मूल स्वर निराशावादी होने के कारण उसमें घटना के स्थान पर समाज की विद्रूपताओं को अनेक विसंगतियों के द्वारा प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य रहा है। परम्परागत नाटकों में निश्चित कथानक के माध्यम से नाटक को आनंदमय बनाया जाता है। अतः असंगत नाटक और परम्परागत नाटक कथावस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, संवाद देश-काल-वातावरण, भाषाशैली, उद्देश्य एवं अभिनेयता इन सभी दृष्टियों से इन दो नाटक प्रणालियों में भिन्नता रही है। परम्परागत नाटकों में सुनिश्चित कथा विकास दिखाकर अन्त में कथानक की सभी समस्याएँ सुलझ जाती हैं, वहाँ असंगत नाटकों में कथा का कोई महत्त्व नहीं रहता। प्रायः उनके कथानक सूत्रहीन होते हैं, वे जहाँ से शुरू होते हैं वहीं खत्म हो गये तो उनमें कोई फर्क नहीं रहता। परम्परागत नाटकों में घटनाओं में सुसंगति रहती है, तो असंगत नाटकों के चरित्र सुनियोजित ढंग से विकसित होते हैं, जबकि असंगत नाटकों के चरित्र विघटित और सामान्य होते हैं। परम्परागत नाटकों में नायक, नायिका और खलनायक होते

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR

हैं, जबकि असंगत नाटकों में नहीं होती। असंगत नाटकों के पात्र प्रायः ऊबे, बीमार, आवारा, थके-हारे, उच्चके, लम्पट और विक्षिप्त होते हैं तो परम्परागत नाटकों में पात्रों का सुनियोजित विकास होता दिखाई देता है।

असंगत नाटकों के कथोपकथन उलझे हुए, अर्थहीन एवं महज समय काटने के लिए होते हैं, इसके विपरित परम्परागत नाटकों के कथोपकथन अर्थपूर्ण, चरित्र-चित्रण में सहायक एवं कथा के विकास में सहायता प्रदान करने वाले होते हैं। "असंगत नाटककार पारम्परिक भाषा को महत्व नहीं देतें। उनका कहना है कि परम्परागत भाषा आज निरर्थक हो गयी है। आज जो कुछ हम कहते हैं, वह सत्य से दूर है। भाषा हमारी वास्तविकता को छिपा रही है। जो हमारे भीतर का यथार्थ है उसे उद्‌घाटित करने में पारम्परिक भाषा असमर्थ है। उसका अवमूल्यन हो गया है - शब्द अपना अर्थ खो चुके हैं। असंगत नाटककारों ने भाषा और शिल्प की दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। इनकी भाषा हरकत की भाषा है। इसमें शब्द के साथ पूरे शरीर को झोंकना होता है। इसमें शब्द कम और हरकत अधिक होती है। ये नाटककार मूक अभिनय को अधिक महत्व देते हैं। बाहरी तौर पर इनके संवाद निरर्थक और असम्बद्ध लगते हैं। उनमें शिल्पगत कोई कसब नहीं होता। लेकिन संवादों के भीतर उतरने पर कसाब की अनुभूति होती है। असंगत नाटकों में रोजमर्रा के बोलचाल की भाषा को स्थान दिया जाता है।[22]

परम्परागत नाटकों में देशकाल वातावरण का ध्यान अवश्य रहता है लेकिन असंगत नाटकों में इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता। परम्परागत नाटकों में स्थान, काल और स्थिति को ध्यान में रखकर नाटक की रचना होती रही है, परंतु असंगत नाटकों में इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। भाषाशैली की दृष्टि से भी असंगत नाटक और परम्परागत नाटकों में भेद हैं। असंगत नाटकाकार ने हरकत की भाषा का उपयोग किया है। असंगत नाटकों में शब्द कम और हरकत अधिक होती है। इसलिए उसे हरकत की भाषा कहते हैं। असंगत नाटककार ने जीवन की ऊब, खोखलेपन, विसंगति को उजागर करने के लिए विसंगत संवाद, शब्दों की पुनरावृत्ति और कभी-कभी मौन का भी उपयोग किया है। परम्परागत नाटक का

उद्देश्य उपदेशात्मक होता है, जबकि असंगत नाटक का उद्देश्य जीवन के असंगतियों, सम्बद्धताओं और विडम्बनाओं को दृष्टिगोचर करना होता हैं। असंगत नाटककार मूक अभिनय के साथ-साथ शारीरिक अभिनय को भी महत्व देते हैं। परम्परागत नाटकों में वेशभूषा को महत्व देते हैं, तो असंगत नाटककार को जीवन की असंगतियों को व्यक्त करने के लिए सांकेतिक प्रणाली को अपनाते हैं। असंगत नाटकों ने मनुष्य जीवन को देखने परखने का स्त्रोत ही बदल दिया है। इसमें "सक्रिय की जगह निष्क्रिय ने ली। सार्थक की जगह निरर्थक ने, इतिहास की तत्कालिता ने या समसामयिकता ने, पात्रों की विपात्रों ने या अपात्रों ने, घटना की अघटना या घटनाहीनता ने, मूल्यों की मूल्यहीनता ने, नायक की अनायक ने, समस्याओं की समस्याहीनता ने और चमत्कार की ऊब ने, व्यंग्य की विद्रूप ने।"[23]

सुप्रसिद्ध नाट्य-आलोचक मार्टिन एसलिन ने इस सन्दर्भ में अपने विचार इस तरह व्यक्त किये हैं - "एब्सर्ड एवं परम्परित नाटक के मुहावरें में मूलभूत अंतर यह है कि जहाँ परम्परित नाटक बाह्य विश्व का वस्तुनिष्ठ चित्रण करने का प्रयत्न करता था, वही एब्सर्ड नाटक मनोदशाओं के रूपकों को मंच पर पेश करने की कोशिश करता है। अतएवं परम्परित नाटक कथा कहता है, एब्सर्ड नाटक रूपकों अथवा बिम्बों का एक पैटर्न विकसित करता है।"[24] इस तरह परम्परागत नाटक और असंगत नाटक में अन्तर दिखाई देता है। जहाँ परम्परागत नाटक जीवन को सकारात्मक रूप से अपनाते हैं वही असंगत नाटक जीवन को नकारात्मक रूप से अपनाते हैं।

पाश्चात्य एब्सर्ड नाट्य-परम्परा

कविता, उपन्यास और कहानी की भाँति पाश्चात्य नाटककारों ने नाटक क्षेत्र में भी अच्छी पहल की है। विश्वयुद्ध ने मनुष्य जीवन को खोखला, निकम्मा कर दिया था। परिणामतः नाटक क्षेत्र में भी नये-नये प्रयोग होते रहें। पाश्चात्य एब्सर्ड नाट्य-परम्परा भी एक नये प्रयोग के रूप में विकसित हो गयी। इस समय नाटकों में कथ्य और शिल्प दोनों स्तर पर क्रांतिकारी परिवर्तन हो गये। पाश्चात्य देशों में एब्सर्ड नाटक का निर्माण विश्वयुद्ध के बाद हुआ। इब्सन (1828-1990

ई॰) और स्ट्रिंटबर्ग (1849-1929 ई॰) के समय में ही परम्परागत रूढियाँ टूटने लगती थी। इसी समय नाटक शिल्प की दृष्टि से नया रूप ग्रहण कर रहा था। इन दोनों के बाद नाटक को आगे बढाने में अलफ्रेड जेरी, ट्रिस्ट नजरा, आस्कर कोकोशका और अपोलनेयर ने भी अच्छा योगदान दिया है। प्रथम महायुद्ध के बाद नाटक में क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई देता है। इस काल में विकृत मनोवृत्तियों का चित्रण नाटकों में अधिक मात्रा में होने लगा। नाटक में मनोवृत्तियों का चित्रण करने में इवानगाल,ब्रेख्त, रिबमांदिनेज तथा एफ॰ स्कटा फिलेराल्ड का नाम सबसे पहले आता है। निरर्थकता, विकृत कल्पना और विदूषकी अदा इनके नाटकों में दिखाई देती हैं।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान मनुष्य जीवन की निस्सारता का तीखा अहसास एक बार फिर होने लगा था। जीवन जीने के लिए कठिन से कठिन परिश्रम करने पड़ रहे थें। उसी प्रयत्न की अगली कड़ी बनकर "दि थियेटर आवद एब्सर्ड" आया। इस विशेष विध के अन्तर्गत बेकेट, ज्यांजेने एडवर्ड आलवी, यूजीन आयनेस्को, हैरोल्ड पिंटर आदि नाटककार आते हैं। इन्होंने एब्सर्ड नाटककार के रूप में "ख्याति एवं सम्मान अर्जित किया है। विज्ञान एवं शैलीगत विशेषताओं के कारण इन नाटककारों को खेमे के नाटककार माना गया है। बेकेट के नाटक "वेटिंग फॉर गोदो" (1952 ई॰) को तो नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसी कारण इस वर्ग के नाटकों को सामाजिक स्वीकृति और मान्यता भी मिल गयी। बेकेट के "वेटिंग फॉर गोदो" के बाद समीक्षकों को भय था कि इतना अच्छा एब्सर्ड नाटक फिर नहीं लिखा जा सकेगा। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उन्होंने ही "एडंगेम" (1957 ई॰) तथा "क्रेप्स लास्टटेप" (1959 ई॰) जैसे सशक्त नाटक एब्सर्ड शैली में लिखें। इसके बाद आदामोव, आलवी, पिंटर इन्होंने असंगत शैली में नाटक लिखना शुरू किया।

इस काल के नाटक मनुष्य जीवन के यथार्थ रूप की उपज है। मनुष्य जीवन में अकेलापन, खोखलापन, निराशा एवं विडम्बना और निस्सारता को इन नाटककारों ने महत्व दिया। इन्होंने इसी मनुष्य जीवन की समस्याओं को असंगत

भाषाशैली में व्यंजित किया। इसीकारण इन नाटककारों को एब्सर्ड नाटककार कहने लगे। उस काल में मनुष्य जीवन में अनेक पीडाओं को निर्माण किया। मनुष्य को अपना जीवन न के बराबर लगने लगा था। उसकी जिंदगी में निराशा ने घर कर दिया। इसी कारण मनुष्य जीवन संकटग्रस्त बन गया था। "द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद व्यक्ति अत्यधिक संत्रस्त हो उठा, और उसके अस्तित्व का संकट उभरकर सामने आया। उसमें घोर निराशा, टूटन, अनास्था और जीवन की निस्सारता व्याप्त हो गयी। विश्वयुद्ध ने मनुष्य के जीवन को नकार दिया और इसीसे विशुद्ध असंगत नाटकों का निर्माण हुआ।"[25] अतः एब्सर्ड मंच उस विश्वव्यापी स्वतः स्फूर्त आंदोलन का एक अंग बन गया है जिसमें मनुष्य जीवन की अपरिहार्य विडम्बनाओं का चित्रण करना ही इन नाटककारों का परम उद्देश्य रहा है। 1945 से 1965 का कालखंड समय खंड असंगत नाटकों की दृष्टि से उर्वरा रहा। इस विधा की तकनीकी विशिष्टताओं के प्रयोग आज भी हिन्दी और अंग्रेजी में हो रहे हैं। इस किस्म के उसके असली रूप में प्रस्तुत करना ही उनका उद्देश्य रहा है। इस सन्दर्भ में डॉ·रामसेवक सिंह ने लिखा है - "सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक कलेवर में मनुष्य के आदिम रूप का पता नहीं लगता। अतः ये नाटककार उसे उसके आदिम रूप में प्रस्तुत करने के लिए उसके विकल्पों को इतना सीमित कर देते हैं कि उसके अस्तित्व की विरूपता को पहचानने देर नहीं लगती।"[26] इस तरह के पाश्चात्य एब्सर्ड के नाटकों की पर्याप्त चर्चा रही, और अनेक एब्सर्ड नाटक लिखे गयें। इन नाटकों में बेकेट के "वेटिंग फॉर गोदो", "एह जो", "फिलम", "एडगेम", "कम एण्ड गो" आदि। ज्यां जेने के "डैथवाच", "दि मेड्स", "दि ब्लैक्स", "दि स्क्रीन्स" आदि आयनेस्को के "दि चेयर्स", "अमेदे आॅर हाऊ टू गेट रिड ऑफ इट", "राइनोसिरोज", "विटिम्स ऑफ डयूटी", "दि मेड टू मेरी" आदि आदामोव के "हे इज अफ्रेड ऑफ वर्जीनिया वुल्फ" आदि पिंटर के "दि बर्थ डे पार्टी", "दि केयर टेकर" आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में समसामयिक मनुष्य जीवन की विडम्बनाओं, अर्थहीनता, निराशा, निस्सारता आदि अनेक प्रश्नों को असंगत शैली में अभिव्यंजित किया गया है।

हिन्दी के असंगत नाटक : पाश्चात्य प्रभाव

पाश्चात्य नाटककारों ने विगत सौ वर्षों में नाटक के क्षेत्र में अच्छी प्रगति की है। इन नाटककारों ने नाटक को कथ्य और शिल्प, दोनों स्तरों पर सक्षम बनाया है, और भाषा को भी नयी शक्ति प्रदान की है। पश्चिम के इब्सन और स्ट्रिंटबर्ड के समय में ही परम्परागत नाट्य-रूढ़ियाँ टूटने लगी। इसी कारण नाटक ने नया शिल्प ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया था। इब्सन और स्ट्रिंटबर्ड के बाद फ्रेड जेरी, अपोलनेयर, आस्कर कोकोशका, ट्रिस्टन जरा इन नाटककारों ने नाटक के क्षेत्र में अच्छी पहचान बनाली और इन्होंने अपने नाटकों में अन्तर्वत्तियों का गहराई से विश्लेषण किया। यही से नाटक में असंगतियों का चित्रण होना प्रारम्भ हुआ। प्रथम महायुद्ध के बाद सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक मूल्यों का विघटन होना प्रारम्भ हो चुका। इसी कारण इस काल में विकृत मनोवृत्तियों का चित्रण अधिक पैमाने पर होने लगा। इसी वक्त नाटक में बड़ी तेजी से परिवर्तन आ चुका था। इस दिशा में इवानगाल, रिषामां, दिनेज, एफ स्काट फिटजेराल, ब्रेश्ट आदि नाटककारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन नाटककारों ने अपने नाटकों में निरर्थक संवाद, क्रूरता, विदूषकी अदा और बीभत्स कल्पना के प्रयोग अधिक पैमाने पर कर, उस समय की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया। द्वितीय महायुद्ध ने तो मनुष्य के जीवन को नकार दिया। इन दोनों महायुद्धों का जहर भारत में भी फैल चुका था। इसी कारण भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक मूल्यों का विघटन होने लगा था। इस दिशा में पाश्चात्य नाटककारों ने ही सबसे पहले कदम उठाये थें। इसी वक्त पाश्चात्य नाटकों का हिन्दी नाटकों पर प्रभाव पडने लगा था। पाश्चात्य नाट्य परम्परा का सर्वप्रथम प्रभाव इब्सन के नाटकों से यथार्थवाद के रूप में हिन्दी में आया। पाश्चात्य नाटकों की तरह हिन्दी में भी एकाकीपन, संत्रास, भय, निराशा, जीवन की निरर्थकता की अनुभूति, यांत्रिक युग का अभिशाप आद का चित्रण होने लगा। भारत में भी "भुवनेश्वर" ने कई विसंगत नाटक लिखे थे, लेकिन भारत की सांस्कृतिक दृष्टि भिन्न होने के कारण विकसित न हो सकें।

हिन्दी के विसंगत नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव की चर्चा करते हुए डॉ·गोविंद चातक ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं - "एब्सर्ड के प्रभाव में आकर हिन्दी नाटक में भद्दी, बेतुकी, भोंडी और अनर्गल स्थितियों का संयोजन एक सामान्य प्रवृत्ति बनी। मानव जीवन की विसंगतियों का दर्शन कराने के लिए नाटककार ने अतिकल्पना, अतिरंजनापूर्ण कथावस्तु, सनसनी खेज दृश्य योजना और विक्षोभ की भावना से परिपूर्ण विचित्र, हास्यास्पद किन्तु कारूणिक चरित्रों का आश्रय लिया इसके साथ इन्होंने विकृति, फैण्टसी और फार्स का प्रयोग कर अद्भूत प्रभाव पैदा करने की कोशिश की।"[27] डॉ·गोविंद चातक के विचार के आधार पर कहा जा सकता है कि, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में लिखे असंगत नाटक पाश्चात्य एब्सर्ड नाट्य-परम्परा से प्रभावित हैं। इस सन्दर्भ में डॉ·रीत कुमार लिखती हैं- "एब्सर्ड नाट्यधारा के रूप में हिंदी नाटकों पर सैम्युअल बेकट का प्रभाव पड़ा, विशेषतः उसके नाटक "वेटिंग फॉर गोदो" का। इस नाट्यशिल्प का प्रतिनिधित्व विपिन अग्रवाल करते हैं। उनका "तीन अपाहिज" नाट्यसंग्रह कथानक, शिल्प, चरित्र और भाषा सभी दृष्टियों से "वेटिंग फॉर गोदो" की विचारधारा से प्रभावित हैं।"[28]

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव जरूर रहा है, फिर भी हिन्दी के असंगत नाटकों में चित्रित असंगतियाँ भारतीय जनजीवन को ही व्यक्त करने में सक्षम हैं।

असंगत नाटक : भारतीय परिप्रेक्ष्य में

हिन्दी असंगत नाट्यधारा मूलतः भारतीय न होकर उस पर पाश्चात्य के एब्सर्ड नाट्यधारा का प्रभाव है। लेकिन पाश्चात्य देशों में मनुष्य जीवन में जिस तरह अनेक विसंगतियों ने जन्म लिया था। उसी तरह भारत में भी उनका गहरा प्रभाव दिखाई देता है। अतः इस संदर्भ में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में अनेक असंगत नाटक लिखे गये। मनुष्य चाहे पूरब का हो या पश्चिम का उसमें समानता होती ही है। इसलिए पश्चिम की तरह पूरब के मनुष्य जीवन में भी असंगतियों का आना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भारत में भी असंगत नाटक के लिए

अच्छी स्थिति पैदा हो गयी थी। इस सन्दर्भ में डॉ॰रीता कुमार कहती है - "वर्तमान युग के नाटकों पर हमें एब्सर्ड नाट्यधारा का ही सर्वाधिक प्रभाव दिखाई देता है, किन्तु यह पाश्चात्य शिल्प आरोपित न होकर स्वाभाविक रूप में आया है, क्योंकि हमारे देश की परिस्थितियाँ भी इस शिल्प के अनुकूल विसंगत परिवेश निर्मित कर रही है।"[29] भारत में भी अनेक असंगतियों का निर्माण हो गया है। इसलिए हिन्दी में भी असंगत नाट्य का निर्माण होना स्वाभाविक ही है।

समसामयिक काल में भारत में क्रांतिकारी परिवर्तन आयें। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में भारत में कुछ नये बदल हो गये। इस बदलाव से ज्यों मनुष्य जीवन में आदर्श और कल्पना परम्परा से उपजे थे उनका -हास होने लगा और नये-नये सामाजिक मूल्यों का निर्माण होने लगा। इसी कारण भारत के मनुष्य जीवन एक कठोर धरातल पर खड़ा होकर अपने स्वप्नों को दोहराना लगा। जिससे मनुष्य जीवन में असंगतियों का निर्वाण अपने आप आने लगा। स्वतंत्रता पूर्व देखे गये स्वप्न धूल में मिल गयें। शासक अपनी सत्ता जमाये रखने के लिए गन्दी हरकते करने लगें। इसी कारण राजनीतिक दबाव आने लगे, दंगे-फसाद होने लगें। परिणामस्वरूप मनुष्य जीवन दयनीय बन गया। इसीकारण मनुष्य जीवन अनेक संप्रदायों में तीव्रता के साथ बटौर गया। जिससे परम्परा से चले आये मूल्य मिट्टी में मिल गये। राजनीति के विसंगत आचरण के कारण सामान्य जनजीवहन में बिखराव आ गया। आज जीवन जीने के लिए बेजान लाश बनकर मनुष्य जिन्दा रहा है। उसीके साथ-साथ औद्योगिक क्रांति ने भी मनुष्य जीवन पर गहरा प्रभाव छोड़ा है। जिससे मनुष्य को अपने जीवन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इन मशीनों के कारण मँहगाई, बेरोजगारी, आर्थिक वैषम्य आने लगा।

आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में भी अनेक समस्याओं का सामना भारतीय व्यक्ति को करना पड़ रहा है। मशीनों के कारण मनुष्य बेरोजगार बन गया है, इसी कारण खाली वक्त निकलाने के लिए मनुष्य अनर्गल कार्य में जुड़ा हुआ दिखाई देता है। इसके साथ-साथ भारतीय यौन-भावना परम्परागत रूढ़ियो से हटकर नयी

हरकते करने लगी हैं। इसका मनुष्य जीवन पर गहरा प्रभाव पडा है। महानगरों में मनुष्य घुट-घुट कर मर रहा है। आज की युवा पीढ़ी पूरी की पूरी दिग्भ्रांत हो चुकी है। उसको सही मार्ग पर लाने वाले शैक्षणिक मंदिरों में भी अनेक नये दृष्टिकोण आने लगे हैं, फिर भी आज का युवा वर्ग दिग्भ्रांत है। इसका कारण है योग्य मार्गदर्शन का अभाव। लेकिन इस घुटन में हर व्यक्ति अपने में उलझा होने के कारण दूसरों को क्या सीखा समझा सकता है। इसीके परिणामस्वरूप भारत में भी मानसिक तनाव, कुंठा, ऊब, निराशा और संत्रास का शिकार आज का हर मनुष्य बन चुका है। इसीकारण भारतीय जनजीवन में भी विसंगतियों ने अपना प्रभाव जमा दिया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारत में असंगत नाटकों को अनुकूल परिस्थितियाँ बन चुकी हैं। असंगति भारतीय मनुष्य जीवन का अविभाज्य हिस्सा होने के कारण असंगति नाटक का विषय बनना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। असंगत नाटक में मनुष्य जीवन के भीतरी यथार्थ और खोखलेपन को अलग-अलग ढंग से व्यंजित किया जाता है। भारत में भी अनेक विसंगतियाँ होने के कारण आज असंगत नाटकों का निर्माण हो रहा है।

असंगत नाटक : सैद्धांतिक विवेचन

कथ्य :

विसंगत नाटकों में कथावस्तु का महत्व नहीं होता। इन नाटकों का कथ्य बड़ा सूक्ष्म होते हुए भी उसमें कार्य-व्यापार अधिक रहता है। इन नाटकों में कोई क्रमबद्धता नहीं रहती लेकिन उसमें भीतरी संगठन अवश्य रहता है और उसीसे दर्शक गण जुड़े रहते हैं। जहाँ परम्परागत नाटकों का कथानक प्रारम्भ, मध्य और अन्त की स्थिति में विकसित होते हैं, वहाँ असंगत नाटकों में ऐसा नहीं होता क्योंकि असंगत नाटक का कथ्य सूक्ष्म होने के कारण उसका कथानक जहाँ से शुरू होता है, वहाँ ही समाप्त होने की सम्भावना रहती है। असंगत नाटकों में मनुष्य जीवन की अनेक समस्याओं को प्रस्तुत करना इन नाटककारों का धर्म होता है।

अतः परम्परागत नाटक की तरह कोतुहल प्रधान कथानक न होकर जीवन की अनेक समस्याओं को दिखाना इनका उद्देश्य रहता है। इन नाटकों में केवल समस्याएँ व्यंजित की जाती है, उनका समाधान नहीं दिया जाता। बल्कि समाधान का ये नाटककार खिल्ली उड़ाते हैं। असंगत नाटकों में मनुष्य जीवन की यथार्थ स्थिति का दर्शन होता है। आज का मनुष्य पशु की तरह हरकतें करता है। वह पशु से भी घिनौने कार्य कर रहा है। असंगत नाटकों में पशु प्रतिकों के माध्यम से मनुष्य के पशूतुल्य प्रवृत्तियों को व्यंजित किया जाता है। इन नाटकों में आदर्श भावना नहीं होती। बल्कि ये आदर्श से घृणा करते हैं। ये नाटककार केवल व्यक्ति की वास्तविक स्थिति को दर्शकों के सामने अभिव्यंजित कर देते हैं।

विसंगत नाटकों के कथानक पर डॉ·चंद्र ने अपने लेख में लिखा है - "असंगत नाटक व्यक्ति के भीतरी यथार्थ को अधिक व्यक्त करते हैं। इसमें परम्परागत मूल्यों के प्रति आस्था नहीं है। जीवन की विद्रूपता और विकृतियों को ये अपना आधार बनाते हैं। इनमें बेहुदे और अनर्गल कार्यों का चित्रण अधिक रहता है। काम के विकृत रूपों की अभिव्यक्ति अतिरंजना के साथ की जाती है। असंगत नाटक प्रतिकों के माध्यम से जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं को चित्रित करते हैं। भय, चिन्ता, निराशा और संत्रास को इनमें अधिक महत्व दिया जाता है। इनके वर्णन हास्यप्रधान और अतिशयोक्तिपूर्ण होते हैं। ये नाटक अधिक विद्रोह में न जाकर, व्यक्ति की निस्सहाय, निरूद्देश्य और अर्थहीन स्थिति को चित्रित करते हैं। इनमें क्रूरता और बीभत्सता अधिक रहती है। ऊपर से ये हलकी किस्म के दिखाई पडते हैं, क्योंकि व्यंग्य से परिहास को अधिक महत्व दिया जाता है, पर इनका अन्तःपक्ष बड़ा गहरा होता है। इनका हास्य करूणा केंद्रित होता है। ये अस्तित्व की पीड़ा को हँसकर भूला देना चाहते हैं।"[30]

डॉ·चंद्र के साथ-साथ डॉ·गोविंद चातक ने भी असंगत नाटकों के कथानक पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - "वस्तुतः विसंगतिवादी नाटक स्थितियों का नाटक है, घटनाओं या चरित्रों का नहीं। उसका लक्ष्य कथा कहना नहीं, काव्यात्मक बिम्ब प्रस्तुत करना है। विसंगतिवादी नाटककार मानवीय स्थिति की सही विद्रूपता

का दर्शन कराने के लिए प्रायः बिम्बों, दुःस्वप्नों और अतिकल्पनाओं को माध्यम बनाते हैं और अतिरंजनापूर्ण कथावस्तु, विलक्षण चरित्रों और सनसनीखेज दृश्ययोजना का अटपटा प्रयोग कर पाठक/प्रेक्षक को झटका देते हैं।····कुलमिलाकर इन नाटकों में व्यंग्य और कारूण्य को रसात्मक तत्वों का समावेश मिलता है जो भय और त्रास का अनुभव देते हैं।"[31]

विसंगत नाटक मनुष्य जीवन की निस्सारता, अर्थहीनता और बेतुकेपन को अतिभयानकता के साथ व्यंजित करते हैं। तात्पर्य यह की असंगत नाटक का कथ्य मनुष्य जीवन की अनेक असंगतियों को विभिन्न असंगत आयामों में अभिव्यक्त करता है।

चरित्र-सृष्टि

परम्परागत नाटकों में जिस तरह नायक, नायिका और खलनायक होते हैं, वैसे असंगत नाटकों में नहीं होते। असंगत नाटकों के चरित्र प्रायः विघटित और सामान्य किस्म के होते हैा। इनके मुख्य पात्र भी विघटित और अतिभावुक होते हैं। इसीकारण इन नाटकों के पात्रों में कोई सुनिश्चित विकास नहीं मिलता। "एब्सर्ड नाटककारों की तरह उनके मुख्य पात्र भी अतिनाटकीय और अतिभावुक होते हैं। अधिकतर तो वे अनायक होते हैं।"[32] इन नाटकों में प्रायः बीमार, आवार, ऊबे, थके-हारे, उच्चके, लम्पट और विक्षिप्त चरित्रों को ही विशेष स्थान दिया जाता है। इन नाटकों में चरित्रों का निर्माण, प्रतिकों के रूप में होता है। हमीदुला के "दरिन्दे" नाटक में शेरे, लोमडी और भालू को मुखौटेधारी व्यक्ति द्वारा मंच पर दर्शाया गया है। असंगत नाटकों के चरित्र प्रायः प्रतीक बन जाते हैं। इसीकारण "चरित्रों को नाम की आवश्यकता नहीं रहती। इन नाटकों में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं की जगह जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है। इन नाटकों के चरित्र पूरी तरह से हास्यास्पद लगते हैं।

असंगत नाटकों के चरित्र समाज बहिष्कृत और पूरी तरह निराशाजन्य होते हैं। इसीकारण उसका कार्यव्यापार तर्करीन और निरर्थक होते हैं। इन पात्रों

में प्रायः असंतुलन ही दिखाई देता है। इन नाटकों के पात्र, दरिद्रता, अभाव और परेशानियों के कारण अपना संतुलन खो बैठते हैं। असंगत नाटकों के पात्रों में जीवनमूल्यों के प्रति विश्वास नहीं रहता। इसी कारण ये पात्र फिजूल हरकतें करते रहते हैं और जीवन के यथार्थ का चित्रण करते हैं। लेकिन समाधान नहीं निकालतें। वे दूसरों को देखकर दुःख तो व्यक्त करते हैं लेकिन सहायता करना उनकी बस की बात नहीं है। उल्टे वे आनंद का अनुभव करते हैं। इन पात्रों के जीवन का कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता है, निरर्थक प्रयत्न में अपना जीवन व्यतीत करना ही उनका असली जीवन होता है।

असंगत नाटकों के पात्र आत्म-प्रशंसा और आत्म-निंदा में आनंद का अनुभव करते हैं। इन पात्रों में बेहुदे और अनर्गल कार्यों का चित्रण अधिक मात्रा में होने के कारण उनमें विदुषकी आदा आ जाती है। इन पात्रों का घमण्ड खोखला और प्रेम पाशविकता से करते हैं। वे पशु की तरह हरकत करते हैं और पशु की तरह जीवन यापन करने में उन्हें आनंद मिलता है। असंगत नाटक के पात्र आशा रहित, निरर्थकत, आवारा, लम्पट, उच्चके होने के कारण वे पाप-पुण्य कुछ भी नहीं मानतें।

असंगत नाटकों के चरित्र और कार्य-व्यापार की चर्चा करते हुए डॉ॰ अज्ञात ने लिखा है - "इसमें ऐसे पात्रों का प्राधान्य है, जो आत्मपीड़ित नियति के दारूण व्यंग्य से परितप्त तथा जीवन के परस्परविरोधी मूल्यों के बीच दिग्भ्रमित रहते हैं। ये पात्र दिन-प्रतिदिन के व्यवहार के पारम्परिक वार्तालाप को असंगत एवं अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वह हास्यास्पद लेग, किन्तु उससे जीवन के किसी नग्न सत्य का उद्‌घाटन हो।"[33] इससे यह तात्पर्य निकलता है कि विसंगत नाटकों के पात्र निर्धारित और सामान्य होते हुए भी मनुष्य जीवन के विद्रुपताओं का चित्रण करने में सक्षम होते हैं।

भाषिक और संवादीय संरचना

असंगत नाटकों की भाषा हरकत की होती है। उनमें हरकतें अधिक रहती है। असंगत नाटककारों ने भाषा और संवाद की दृष्टि में काफी क्रांतिकारी परिवर्तन

किया है। वे परम्परागत भाषा को अर्थहीन, निकम्मी मानते हैं, इनकी दृष्टि में पारम्परिक भाषा असंगत जगत् का चित्रण करने में अक्षम्य है। इसलिए उन्होंने हरकत की भाषा का उपयोग करना अच्छा समझा। असंगत नाटककार जीवन और जगत् को विसंगत, विद्रूप और निरर्थक मानते हैं। वे पारम्परिक और प्रचलित भाषा पर विश्वास नहीं करते। इनका कहना है कि पारम्पारिक भाषा आज निरर्थक, खोखला बन चुकी है। जिससे आज का सत्य कहना कठिन लगता है। इसलिए उन्होंने परम्परागत भाषा के ढाँचे को तोड़कर नये अर्थ से सम्पृक्त हरकत की भाषा को अपनाया है।

असंगत नाटकों में शब्द कम और हरकतें अधिक होती हैं। इसमें शब्दों के साथ शरीर को भी पूरी तरह झोंक देना पडता है। इन नाटकों की भाषा रोजमर्रा की सामान्य बोलचाल की होती है। बाहरी तौर पर इनके संवाद निरर्थक और असम्बद्ध लगते हैं, लेकिन संवादों के भीतर उतरने पर कसाब की अनुभूति होती है। असंगत नाटकों में मनुष्य के भीतरी यथार्थ को उद्घाटित करने के लिए कभी-कभी ये मूक अभिनय को अधिक महत्त्व देते हैं। इन नाटककारों का मूल उद्देश्य जीवन और जगत् के विसंगतियों का चित्रण करना रहा है। इसलिए उन्होंने परम्परागत भाषा को त्यागकर प्रतिकात्मक और सांकेतिक भाषा का उपयोग किया है। कमलेश्वर के शब्दों में - "इन नाटकों में भाषा का इस्तेमाल नहीं, शब्द के नाद और स्वरों का इस्तेमाल है, जो दर्शक परम्परागत संज्ञा से शून्य करने का काम करती है।"[34]

मनुष्य जीवन की समस्याओं और खोखलेपन को चित्रित करने के लिए असंगत नाटककारों ने विसंगत भाषा और संवादों का प्रयोग किया है। इन संवादों में आज की विद्रुपताओं का चित्रण करने की पूरी क्षमता दिखाई देती है। मनुष्य जीवन की विद्रुपता, रिक्तता, विसंगति तथा विकृति चित्रित करने के लिए इन नाटककारों ने अपने नाटकों में निरर्थक, बेतुके, यांत्रिक, विश्रृंखल, अस्पष्ट, अटपटे, खंडित, असम्बद्ध, हास्यास्पद, अतिरंजित, अप्रासंगिक, विरोधाभास से युक्त संवाद एवं हरकत से युक्त भाषा का प्रयोग किया है।

डॉ.किरणचंद्र शर्मा ने इस संदर्भ में लिखा है - "एब्सर्ड नाटक के वार्तालाप के विषय में कहा जाता है, 'His characters talk but say nothing' और यही "टॉक बट से नथिंग" इन नाटकों का सम्पूर्ण बाहरी विघटन निर्मित करती है। यानी कि नाटक के भीतरी "भय" को पात्रों को बड़बडाना जिस प्रक्रिया के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है वही असंगत नाट्य है। इसमें पात्र भाषा में संवाद तो करते हैं पर उनके शब्द उनकी भाषा नहीं देते, उनकी ध्वनियाँ तथा उनके सम्पूर्ण हावभाव ही उनकी भाषा होते हैं।"[35] इस कारण असंगत नाटककार मूक अभिनय को अधिक महत्व देते हैं।

प्रतीक और बिम्ब विधान

कहा जा सकता है कि प्रतीक व्यक्ति-चेतना की अभिव्यक्ति का वह जीवन्त माध्यम है जिसका आश्रय लेकर रचनाकार अमूर्त रूप और व्यापार के उन प्रसंगों की अभिव्यक्ति को सम्प्रेषित करता है जिनका मूल स्त्रोत यथार्थ, अनुभूति, कल्पना अथवा मन से ही सम्भव है।[36] प्रायः असंगत नाटकों में प्रतिकों का प्रयोग होता रहा है। असंगत नाटकों में मनुष्य जीवन के यथार्थ का चित्रण होता है। इसमें पात्रों की अर्थहीनता, निरर्थक वार्तालाप, हरकत की भाषा, बेढंगी परिस्थितियों को असंगत नाटकों में सफलता के साथ चित्रित करने के लिए नाटककार प्रतीक और बिम्ब विधान का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। असंगत नाटक कथा विहीन होते हैं। इनमें प्रतीक और बिम्ब विधान के माध्यम से असंगत नाटककार रोचकता का निर्माण करते हैं। प्रतीक और बिम्बों का प्रयोग अद्‌भूत वातावरण की सृष्टि करने के लिए किया जाता है।

समसामयिक युग मे मनोविज्ञान का ही महत्व रहा है। इसी मनोविज्ञान को व्यक्त करने के लिए असंगत नाटककार काव्यात्मक बिम्बों का प्रयोग करते हैं। जीवन का खोखलापन, विद्रूप दृश्यों और मनोवैज्ञानिक सत्य को चित्रित करने का काम असंगत नाटककार प्रतीक और बिम्बों के माध्यम से करते हैं। मनुष्य के बर्बर और पशूतुल्य प्रवृत्तियों का चित्रण करने के लिए असंगत नाटककारों ने पशू-प्रतिकों

का सहारा लिया है। असंगत नाटककार मनुष्यों की मनोदशाओं के रूप को मंचित करने के लिए प्रतिकों और बिम्बों का पैटर्न तैयार कर देते हैं और प्रेक्षकों पर प्रभाव डालने की पूरी कोशिश करते हैं। आज का मनुष्य क्रूर, विद्रूप, नीच बन गया है। उनको चित्रित करने के लिए असंगत नाटक्कारों को अनेक प्रतिकों का पैटर्न विकसित करना पड़ता है।

असंगत नाटककार पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने के लिए पारम्परिक वेशभूषा से हटकर नयी प्रतिकात्मक वेशभूषा का प्रयोग करते हैं। कभी-कभी पात्रों को अखबार लपेट कर या टाटके कपड़े परिधान करके रंगमंच पर आना पडता है। कभी-क्भी मुखौटों का प्रयोग भी किया जाता है। हमीदुल्ला के "दरिन्दे" नाटक के पात्र शेर, भालू और लोमडी को मुखौटों के माध्यम से ही मंच पर उपस्थित किया गया। अतः "निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान जीवन और जगत् के वास्तविक संदर्भों, विसंगतियों एवं समासों का तीक्ष्ण सशक्त रंगमंचीय सम्प्रेषण ही आधुनिक प्रतिकात्मक नाट्य-शिल्प हैं।"[37] असंगत नाटकों के प्रतीक और बिम्ब क्लिष्ट होने के कारण ये नाटक बौद्धिक वर्ग के नाटक बन गये हैं। क्योंकि सर्वसामान्य मनुष्य को इनका अर्थ नहीं लगता। इसीकारण इन नाटकों का बोलबाला नही हो पाया है। असंगत नाटकों में विकृति, फार्स, स्वप्न दृश्यों और फैण्टसी का प्रयोग कहीं-कहीं दिखाई देता है। इनका दर्शकों के सामने प्रतीक और बिम्ब विधान से ही सम्प्रेषित करना पडता है।

रंगमंचीय आयाम

नाटक दृश्य-काव्य विध है। साहित्य की अन्य विधाओं के समान नाटक में वर्णित जीवन की कल्पना की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि नाटक में दर्शक या श्रोता पात्रों के जीवन को अपने सामने देखते हैं। इसीकारण नाटक का सृजन दर्शकों के लिए ही होता है। इसलिए नाटक, दर्शक औरे रंगमंच अनिवार्यतः एक दूसरे से जुडे रहते हैं। डॉ॰लाल ने लिखा है - "रंगमंच कई रंगकर्मियों का सामूहिक अधिष्ठान है। रंगक्षेत्र का सारा कार्य एक ओर सामाजिक कार्य है, दूसरी ओर सामूहिक, तीसरी ओर यह शिल्प-प्रधान है। इसमें तमाम तकनीकी दक्षताओं का पूरा पूरा सहयोग है।"[38] असंगत नाटक और पारम्परिक नाटकों में मूलतः भिन्नता रही

है। इसलिए असंगत नाटकों के रंगमंच में भी भिन्नता रही है। असंगत नाटकों का रंगमंच सामान्य न होकर ऊलजलूल होता है।

असंगत नाटककार पारम्परिक रंगमंच में विश्वास नहीं करतें। इनकी मंच-सज्जा बिलकुल साधारण तथा असम्बद्ध होती है। इनके पात्रों के वेशभूषा में चमक-दमक नहीं होती। असंगत नाटकों का रंगमंच इतना ऊलजलूल होता है कि दर्शक और पात्रों के बीच में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता। मनुष्य जीवन की महत्वपूर्ण विसंगतियों की अभिव्यंजना के लिए असंगत नाटककार प्रतिकात्मक रंगमंच को अधिक महत्व देते हैं। अतः इनका रंगमंच ऊलजलूल, अल्पव्यय तथा प्रतिकात्मक होता है। अंगिक (शारीरिक) अभिनय को इन रंगमंच में महत्वपूर्ण स्थान है।

असंगत रंगमंच का मुख्य उद्देश्य दर्शकों को सतर्क-सजग रखने का होता है। इसीकारण विसंगत नाटककार अभिनेता और रंगमंच को बनावट के बंधनों से मुक्त करने और अभिनेता की कल्पनाशक्ति की स्वतंत्रता को बाँध लेने में विश्वास करते हैं। इन नाटकों में पात्रों की वेशभूषा में भी चमक-दमक नहीं होता। इनका मूल उद्देश्य दर्शकों को सतर्क-सजग रखने का होता है। इसलिए इन नाटकों के पात्रों की वेशभूषा साधारण होती है। कभी-कभी इनके पात्र घास-फूस, अखबार या टाट लपेट कर भी रंगमंच पर उपस्थित होते हैं।

असंगत नाटक का रंगमंच अर्थहीनता में भी अर्थ की तलाश करता है। रंगमंच की प्रत्येक वस्तु किसी न किसी अर्थ से जुडी रहती है। असंगत नाटकों को अभिनीत करने के लिए दृश्यों में बार-बार बदल नहीं करने पडतें क्योंकि एक ही दृश्ययोजना पर समस्त नाटक अभिनीत किया जा सकता है। इन नाटकों में दृश्य परिवर्तन के समय पर्दो की भरमार नहीं होती। प्रेक्षकों के सामने हमेशा कुछ-न-कुछ घटित होता रहता है। असंगत नाटककार मूक अभिनय को अधिक महत्व देते हैं। प्रायः इनके पात्र हमेशा सक्रिय रहते हैं।

असंगत नाटकों का कथानक अत्यंत सूक्ष्म होता है। इसीकारण इनके ध्वनि-प्रकाश योजना में भी प्रतिकात्मकता आ जाती है। विसंगत नाटकों के पात्रों

का कार्य-व्यापार अर्थहीन, भोंदी, बेतुकी तथा विदुषकी आदा का होता है।

पात्रों के कार्य-व्यापारों की चहर्चा करते हुए डॉ॰रामसेवक सिंह ने लिखा है - "ड्रामा शब्द का अर्थ मूल ग्रीक भाषा में "मैं कुछ करता हूँ" होता है, इसीलिए ऐब्सर्ड नाटककार हमेशा अपने चरित्रों को सक्रिय रखते हैं। परिणाम यह होता है कि दर्शकों की आँखों के समक्ष कुछ न कुछ घटित होता रहता है। ये नाटककार भय, चिंता और त्रास जैसे अनुभवों को भी रंगमंच पर उपस्थित करने का प्रयत्न करते हैं।"[39] उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि असंगत नाटकों का रंगमंच ऊलजलूल, अल्पव्यय तथा प्रतिकात्मक होता है।

उद्देश्य

असंगत नाटकों का मूल उद्देश्य मनुष्य जीवन की विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों को यथार्थ रूप में चित्रित करना और मनुष्य जीवन की निस्सारता, निराशा, विडम्बना को हास-परिहास की स्थिति में चित्रित करना रहा है। आज का मनुष्य अनेक विसंगतियों से भरा हुआ दिखाई देता है। इसीकारण वह आज ठीक ढंग से जीवन यापन भी नहीं कर सकता है। इससे मालूम होता है कि आज का मनुष्य कितना संकटग्रस्त बन बैठा है। उसको निराशा, भय, कुण्ठा और संत्रास ने विद्रूप बना दिया है। उसने नैतिकता के बन्धन तोड दिये है। आज का आदमी मुखौटा लगाये घूमता है। इसीकारण उसका असली रूप सामने नहीं आता। आज का मनुष्य अन्दर से एक और बाहर से एक बन चुका है और इसीकारण उसमें अनेक विसंगतियों ने जन्म लिया है। असंगत नाटकों के उद्देश्य के बारे में डॉ॰रामसेवक सिंह ने लिखा है - "ऐब्र्स मंच उस विश्वव्यापी स्वयंःपूर्त आंदोलन का एक अंग है जिसमें जीवन की अपरिहार्य विडम्बनाओं तथा उसकी निरर्थकता से क्षुब्ध मनुष्य की असहाय स्थिति का चित्रण ही प्रधान उद्देश्य है।"[40] अतः स्पष्ट होता है कि असंगत नाटकों का मूल उद्देश्य मनुष्य जीवन के बेतुकेपन, खोखलेपन और अस्पष्टता को नग्न यथार्थ के रूप में चित्रित कर उनके जीवन की अनेक विसंगतियों को उजागर करना ही रहा है। आज के विसंगत परिवेश में मनुष्य की स्थिति इतनी गंभीर बन बैठी है कि वह न मर सकता है और न जी सकता है। असंगत नाटककारों ने इसी

स्थिति का जायजा अपने असंगत नाटकों में लेकर मनुष्य के भीतरी स्थिति का पर्दाफाश किया है।

स मा हा र

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं -

× हिन्दी में "असंगत नाटक" शब्दप्रयोग विशेषतः अंग्रेजी के "एब्सर्ड ड्रामा" (Absurd Drama) का पर्यायवाची है तथा हिन्दी में प्रयुक्त "विसंगत" या "असंगत" शब्द अंग्रेजी को एब्सर्ड (Absurd) का पर्यायवाची है।

× विसंगत नाटक स्वातंत्र्योत्तर हिन्दो नाट्य साहित्य का अद्यतन प्रवृत्ति है, जिस पर पश्चिम के एब्सर्ड नाट्य परम्परा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

× कथानक, शिल्प तथा शैली की दृष्टि से असंगत नाटक और पारम्परिक नाटकों में काफी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

× असंगत नाटक मानव के खंडित जीवन को हरकत की भाषा में व्यक्त करते हैं। इन नाटकों के संवाद भाषा -शिल्प की दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं।

× असंगत नाटकों का रंगमंच प्रतिकात्मक, अल्पव्यय तथा ऊलजलूल होता है।

× असंगत नाटकों के पात्रों की सृष्टि मनोविज्ञान के धरातल पर असामान्य व्यक्तित्व के रूप में की जाती है।

× असगत नाटककारों ने मनुष्य जीवन के विसंगत बोध को अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है। वर्तमान युग में असंगति मनुष्य जीवन का हिस्सा बन चुकी हे, जो समसामयिक युग में व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भावनिक, सांस्कृतिक है।

× असंगत नाटककार का मूल उद्देश्य मनुष्य जीवन का विभिन्न विंसगतियों के नग्न यथार्थ रूप में चित्रित करना रहा है।

संदर्भ

1· संपा·डॉ·विजयकांतधर दुबे - हिन्दी नाटक : प्राक्कथन दिशाएँ, (डॉ·नरनारायण राय - "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : प्रवृत्ति और विश्लेषण", लेख) प्र·सं·1985 पृ·64-64·

2· संपा·डॉ·हरदेव बाहरी - बृहत अंग्रेजी-हिन्दी कोश, पहला भाग, सं·1969, पृ·10

3· संपा·सत्यप्रकाश, एवं बलभद्रप्रसाद मिश्र, मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश", प्र·सं·1971, पृ·7

4· सं·(प्र·) रामचंद्र वर्मा, "मानक हिंदी कोश" पहला खंड, प्र·सं·पृ·220

5· वही, (पाँचवा खंड) पृ·99

6· By Grolier, "The Encyclopedia American, Vol.I, first published in 1829, P.57

7· डॉ·गोविंद चातक, "रंगमंच : कला और दृष्टि", प्र·सं·1976, पृ·105

8· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच, (डॉ·गिरीश रस्तोगी, "असंगत नाटक और उसका रंगमंच" लेख) प्र·सं·1981, पृ·113

9· डॉ·रामजी तिवारी, "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी समीक्षों में काव्य-मूल्य", प्र·सं·1980, पृ·284

10· "Life is like a glass-house where the shadows of reality invisibly get mixed up and confuse the onlooker. On the whole reality is gague and absurd like dreams." - Ram Sevak Singh, Absurd Drama, first Edition 1973, P.17

11· देवराज उपाध्याय - साहित्य का मनोवज्ञानिक अध्ययन, प्र·सं·अनुल्लिखित, पृ·92

12· नरनारायण राय - नाट्य विमर्श, प्रथम संस्क·1984, पृ·124

13· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच, §डॉ·नरनारायण राय, "असंगत नाट्य और जीवन संदर्भ", लेख§, प्र·सं·1981, पृ·79

14· B.J.N.Mundra & Dr.S.C.Mundra, "A History of English literature", Vol.lll, Edition 1987, P.595

15· डॉ·रामसेवक सिंह - एब्सर्ड नाट्य परम्परा, प्र·लेख, प्र·सं·1970, पृ·9

16· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच, §डॉ·प्रेमपति, "असंगत नाट्य आंदोलन", लेख से उद्धृत§, प्र·सं·1981, पृ·27

17· वही, पृ·31

18· डॉ·नरनारायण राय - "नटरंग विवेक," प्र·सं·1981, पृ·84

19· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच, §डॉ·किरणचंद्र शर्मा, "हिन्दी असंगत नाट्य-भूमिका तथा विधान" लेख§ प्र·सं·1981, पृ·98

20· डॉ·जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा, प्र·सं·1988, पृ·342-343

21· डॉ·रामसेवक सिंह - एब्सर्ड नाट्य परम्परा, §एब्सर्ड नाट्य-शैली लेख§ पृ·106, 107, प्र·सं·1970

22· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच, §डॉ·चन्द्र, "असंगत हिन्दी नाटक और रंगमंच" लेख§ प्र·सं·1981, पृ·128

23· संपा·नरनारायण राय, - असंगत नाटक और रंगमंच § कमलेश्वर, "असंगत नाटक : युद्धों के अवशेष और दस्तावेज, लेख§ प्र·सं·1981, पृ·74

24· संपा·डॉ·शिवराम माली / डॉ·सुधाकर गोकाककर - नाटक और रंगमंच, §डॉ·चन्दूलाल दुबे अभिनंदन ग्रंथ§ §डॉ·केशव मुतालिक - अनुवाद डॉ·सरजू-प्रसाद मिश्र§ का "अमरीकी रंगमंच : एक सिंहावलोकन§, लेख§ प्र·सं·1979, पृ·74

25· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच, §डॉ·चंद्र, "असंगत हिन्दी नाटक और रंगमंच", लेख§, प्र·सं·1981, पृ·126

26· डॉ·रामसेवक सिंह - एब्सर्ड नाट्य-परम्परा, प्र·सं·1970, पृ·11

27· डॉ·गोविंद चातक - आधुनिक हिन्दी नाटक : भाषिक और संवादीय संरचना", प्र·सं·1982, पृ·92

28· डॉ·रीताकुमार - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, सं·1991, पृ·161

29· वही, पृ·159

30· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच, §डॉ·चंद्र, "असंगत हिंदी नाटक और रंगमंच", लेख§ प्र·सं·1981, पृ·127

31· डॉ·गोविंद चातक - रंगमंच : कला और दृष्टि, प्र·सं·1976, पृ·106

32· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच §डॉ·रामसेवक सिंह, "असंगत नाट्यशैली, लेख§ प्र·सं·1981, पृ·74

33· डॉ·अज्ञात - भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, प्र·सं·1978, पृ·84

34· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच §कमलेश्वर, "असंगत नाटक : युद्धों के अवशेष और दस्तावेज, लेख§ प्र·सं·1981, पृ·14

35· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच, §डॉ·किरणचंद्र शर्मा, "हिन्दी असंगत नाट्य : भूमिका तथा विधान" लेख§, प्र·सं·1981, पृ·98

36· डॉ·बालेन्दु शेखर तिवारी / डॉ·बादामसिंह रावत, "हिन्दी नाटक के सौ वर्ष" §डॉ·वासुदेव सिं, "हिन्दी के प्रतीक नाटक" लेख§ प्र·सं·1990 पृ·79

37· डॉ·केदारनाथ सिंह - हिन्दी के प्रतीक नाटक और रंगमंच, सं·1985, पृ·37

38· डॉ·लक्ष्मी नारायण लाल - रंगभूमि : भारतीय नाट्य-सौन्दर्य, प्र·सं·1989, पृ·68

39· डॉ·रामसेवक सिंह - एब्सर्ड नाट्य-परम्परा, प्र·सं·1970, पृ·109

40· डॉ·रामसेवक सिंह - ऐब्सर्ड नाट्य-परम्परा, प्र·सं·1970, पृ·10-11